संपादकीय

आजकल मैं इस बात में उलझा रहता हूँ कि शब्द जो कुछ कहने के लिए ही हैं, अब कुछ कहते क्यों नहीं? अगर कुछ कहते भी हैं तो उनका असर क्यों नहीं होता?शब्द को ब्रह्म कहा गया है। संकल्पभूत शब्द ही तो मंत्र होते हैं। यह भी कहा जाता है कि शब्द जादुई चाबी की तरह होते हैं। इनका सही इस्तेमाल लोगों के मुँह बंद रख सकता है और दिलों के ताले खोल भी सकता है।

क्या यह चिंता का विषय नहीं होना चाहिए कि इन दिनों जबकि इतना लिखा जा रहा है। नित्य नए शब्द, मुहावरे, परिभाषाएं गढ़ी जा रही हैं फिर भी साहित्य क्यों विरल होता जा रहा है? पर्यावरण को बचाने के लिए इतना कुछ लिखा जा रहा है --पर बावजूद इसके भी पर्यावरण इतना दूषित क्यों होता जा रहा है? हम अपनी बोली-भाषा, संस्कृति, पारंपरिक ज्ञान और कलाओं को बचाने की बात रोज करते हैं, नित्य लेख लिखे जाते हैं, कितनी ही किताबें छप रही हैं, लगातार इसके लिए समारोह सेमिनार आयोजित किए जाते हैं पर फिर भी सब विलुप्त होने की कगार पर क्यों हैं? कहीं कोई तार टूट गया सा लगता है, कोई सूत्र खोया सा लगता है। दरअसल शब्दों के साथ यदि भाव तथा संकल्प की शक्ति न हो तब शब्द शक्तिहीन, निर्जीव हाकर रह जाते हैं। ऐसे शब्दों के अर्थ तो हो सकते हैं फिर भी यह निरर्थक ही होते हैं। अब जबकि हम तकनीकी रूप से दिनों-दिन सक्षम और सशक्त होने लगे हैं। महामारी जैसी विपदाओं को पीछे ढकेलने में सफल होने का भी दावा ठोंक रहे हैं। जीवन सुखमय बनाने के साधन बढ़े हैं। जीवन के बारे में सोचना भी व्यापक हुआ है। फिर वह क्या कारण है कि हमारे जीवन से महत्वपूर्ण चीजें उठती जा रही हैं? आपसी समझ, एक-दूसरे का ख्याल, प्रेम, करुणा, सौंदर्य। जो सामने है बस उसी से सरोकार रह गया है। अपने और अपने दिनों-दिन सिकुड़ते न्यूक्लियर परिवार से बाहर किसी को किसी में दिलचस्पी नहीं। ''प्रायवेसी'' के नाम किसी को अपने मामलों में दखल देने की इजाजत नहीं...पड़े रहो अपने घरों में, दड़बों में। अब इस तालाबंदी के दिनों की सुरक्षा के तहत सामाजिक दूरी, एकांतवास ने हमें और भी चौकन्ना कर दिया है। लोगों से हमारे संबंध इतने औपचारिक हो गए हैं कि कोई मिलने-मिलाने आता भी है तो हम ठीक ऐसे सतर्क हो जाते हैं जैसे कोई कुत्ता, जब उसके स्वामित्व की जानी-पहचानी गली में कोई दूसरा कुत्ता घुस जाता है। जितनी जल्दी हो सके निकालो इसे यहाँ से, इससे...खतरा है।

साक्षात्कार

माधवराव सप्रे स्मृति संग्रहालय के संस्थापक

(पद्मश्री **विजयदत्त श्रीधर** से **कुसुमलता सिंह** की बातचीत)

परिचय

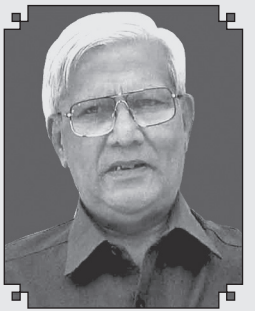

विजयदत्त श्रीधर

पत्रकारिता इतिहास के अध्येता श्री विजयदत्त श्रीधर का जन्म 10 अक्टूबर 1948 को ग्राम बोहानी, जिला-नरसिंहपुर, मध्यप्रदेश में हुआ। आपके पिताश्री पं. सुंदरलाल श्रीधर स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और गांधीवादी सर्वोदय कार्यकर्ता थे।

माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल की स्थापना, पत्रकारिता विषयक शोध एवं इतिहास प्रलेखन के प्रामाणिक प्रयत्नों तथा सामाजिक सरोकारों की पत्रकारिता के लिए श्री विजयदत्त श्रीधर को वर्ष 2012 में भारत सरकार ने पद्मश्री अलंकरण से सम्मानित किया।

'भारतीय पत्रकारिता कोश' आपकी महत्वपूर्ण कृति है जिसमें सन 1780 से सन 1947 तक की भारत की सभी भाषाओं और तत्कालीन भारत के पूरे भूगोल का शोधपरक इतिहास विवेचित है। आपकी पुस्तक 'पहला संपादकीय' को भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने भारतेन्दु हरिश्चंद्र पुरस्कार (वर्ष 2011) से सम्मानित किया है। 'मध्यप्रदेश में पत्रकारिता : उद्भव और विकास' और 'चौथा पड़ाव' आपकी बहुपठित पुस्तक है। शिक्षा एवं शोध में असाधारण अवदान के लिए स्वराज संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के महर्षि वेद व्यास राष्ट्रीय सम्मान (वर्ष 2012-2013) से सम्मानित किया गया। छत्तीसगढ़ सरकार ने 'माधवराव सप्रे राष्ट्रीय रचनात्मकता सम्मान' (2015) से सम्मानित किया है।

'माधवराव सप्रे रचना संचयन' (साहित्य अकादेमी), 'समकालीन हिन्दी पत्रकारिता' और 'एक भारतीय आत्मा' आपकी महत्वपूर्ण संपादित पुस्तकें हैं। विजयदत्त श्रीधर, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल में शोध निदेशक (2005-2010) रहे हैं। इस अवधि में 'स्वतंत्र भारत में भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता' शोध परियोजना के अंतर्गत 75 शोध कार्यों का संयोजन-संपादन और प्रकाशन किया गया। सितंबर 1981 से पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका 'आंचलिक पत्रकार' का संपादन कर रहे हैं।

संपर्क– टेलीफोन 0755-3558029, 2763406, **मो.** 7999460151